भारतीय लोकतन्त्र में दलितों का योगदान

डॉ0 अनिल कुमार पासवान

शोध–छात्र

ललित ना0 मि0 वि0 वि0 दरभंगा

स्वातन्त्रयोत्तर भारत में दलित संदर्भ एक युगान्तकारी सामाजिक परिवर्त्तन का पर्याय है। कम से कम राजनीतिक परिदृश्य में दलित एक तेजी से उभरती सामाजिक शक्ति की तरफ संकेत करता है। राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया, जो आजादी के बाद शुरु हुई थी, इस संदर्भ में अधूरी प्रतीत होती है, क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दलितों को मुख्य धारा में लाने का काम अभी भी लक्ष्य से कोसों दूर है। भारतीय इतिहास के एक बदनुमा अध्याय के प्रतीक के रूप में दलित आज भी सामाजिक जीवन में सम्मान, प्रतिष्ठा तथा सामाजिक न्याय से वंचित है। तब और अब में सिर्फ इतना ही अन्तर है कि उस समय वे खुले शोषण तथा अत्याचार के विषय थे, अब वे छद्म शोषण, विलगाव और हेय दृष्टि को सामाजिक जीवन झेलने को मजबूर हैं।[1]

संस्कृत का दलित शब्द दल धातु से क्त् प्रत्यय जुड़ने से बना है। संस्कृत साहित्य में इस दल धातु का व्यवहार विदीर्ण अर्थात् फटने के अर्थ में तथा विकास के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।[2]

सरकारी तौर पर वर्ष 1931 की जनगणना में अस्पृश्य जातियों को ही दलित स्वीकार किया गया। एक विचारक डॉ0 श्योराज सिंह बेचैन के अनुसार दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है। अर्थात् अनुसूचित जाति से जो बाहर है, उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति चाहे कितनी भी दयनीय क्यों न हो, वे दलित नहीं है।[3]

कंबल भारती के अनुसार दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया हो। जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जैसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सवर्णों में सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही दलित है। इसके अन्तर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जाति की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार वर्णवादी व्यवस्था के तहत जिन्हें सदियों से अस्पृश्य करार दिया गया है और अमानवीय व्यवहार का सामना करना पड़ता है, वे दलित हैं।[4] आधुनिक भारत में भारतीय संविधान के तहत जिन्हें अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त हो, वह दलित है।

आधुनिक भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में दलित वह है, जिसका दारूण, दलन, दोहन एवं शोषण होता रहा है। समाज में जो वंचित, उपेक्षित एवं प्रताड़ित रहा है। शोक जिसका आहार, शत्रु जिसका उदगार और अभिशाप जिसका उपहार रहा हो वही दलित है। बंधन जिसका कंगन, उत्पीड़न जिसका ईंधन और अधिकार, अपहरण जिसका आलिंगन रहा हो, वही दलित है।

दलित अत्याचार निवारण अधिनियम को हटाने की माँग 1995 में की गयी थी।[5] उनका आरोप यह था कि प्रतिष्ठित लोगों के खिलाफ इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। उनके समर्थन में बहुत सारे प्रतिष्ठित लोग आने को सहर्ष तैयार थे। इन लोगों का कथन था कि ऐसा कोई एक्ट नहीं होना चाहिए जो समाज को तोड़े। इन प्रतिष्ठित लोगों के विचार से वे लोग भी सहमत थे–सामाजिक एवं आर्थिक रूप से विशेषाधिकार का उपयोग करते आ रहे हैं।[6] वर्ष 1995 में ही दलित अधिनियम की वैधानिकता को चुनौती देने वाली तथा 200 याचिकाएँ इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दाखिल की गयी थी। इन याचिकाओं में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 की धारा 3, 4, 7, 8 एवं 14 को असंवैधानिक घोषित करने की माँग की गई। दलित और सवर्ण राजनीति आज जिस मोड़ से गुजर रही है वह किसी भी स्तर पर समाज को जोड़नेवाली नहीं, बल्कि वह दोनों वर्गों के बीच जातीय दुर्भावना को और भी सुदृढ़ करने का काम करती हैं।

अंग्रेजी राज्य से 1947 में मुक्ति एवं 1950 में भारतीय गणराज्य की स्थापना भारतीय इतिहास में मील का पत्थर है। भारतीय गणराज्य से उम्मीद थी कि यह भूखे शेर की तरह दकियानूसी समाज पर टूट पड़ेगा और अपने प्रयास से समतामूलक समाज का सृजन करेगा, पर भारतीय गणराज्य समाज के सामने नतमस्तक बना रहा। पराक्रम एवं आक्रामकता इनके चरित्र से क्रमशः विलुप्त होते गए। और उस समाज के भार को ढ़ोते रहना इनकी नियति बन गई है। ये पंक्तियाँ दलित शिक्षा आंदोलन के संस्थापक द्वारा कहा गया है कि यह ग्रन्थ दलित भारतीय दृष्टिकोण से भारतीय राजनीति का स्पष्ट रूप से विवेचन करता है।[7]

20वीं सदी की भारतीय राजनीति चार विशिष्ट चरणों से होकर गुजरी है। जिसमें पहला चरण आजादी के संग्राम काल का, दूसरा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का, तीसरा लोककल्याण का तथा चौथा चरण सामाजिक पुनरूत्थान काल का है। आजादी के बाद नेहरू के नेतृत्व में ही राष्ट्र के पुननिर्माण का कार्य प्रारंभ होता है। नेहरू युग में भारतीय अर्थव्यवस्था का सृजन और विकास इस तरह किया गया

कि समाज व्यवस्था को चोट न पहुँचे। उन्होंने भू–हदबन्दी कानून को सतही और अन्यमनस्क ढंग से लागू किया। नक्सलवाद ने जमीन के सवाल उठायें और भूमिहीन तथा सीमान्त लघु किसानों को आकर्षित किया था।

पंचायती राज को लेखक ने नकारात्मक हस्तक्षेप का क्षेत्र माना है। पंचायती राज और नगर पालिका विधेयक 1989 राजीव गाँधी सरकार में पारित हुआ, पर नरसिंहा राव की सरकार में इसे एक प्रभावशाली अधिनियम बनाया।[8] यह पंचायती राज भारतीय राज्य में किस तरह नकारात्मक हस्तक्षेप हैं, इस पर लेखक का कथन है कि जिला प्रशासन भारतीय राज्य की आधारभूत इकाई है, जिसका प्रमुख कार्य कानून–व्यवस्था को कायम रखना, विकास योजनाओं को लागू करना तथा राजस्व वसूल करना है, किन्तु जिला प्रशासन प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक संस्थाओं से परस्पर विरोधी रूप में सामने आता है। पंचायती राज अधिनियम के कारण स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों का जिला प्रशासन के कार्य में हस्तक्षेप बढ़ेगा, जो पूर्णरूपेण वैधानिक होगा।[9]

तार्किक दृष्टिकोण से भारतीय राज्य की आधारभूत इकाई जिला प्रशासन के अधिकारों पर वैध रूप से अपराधी ठेकेदार स्थानीय स्तर पर सत्ता के दलाल, जो भारतीय समाज के काले पक्ष के प्रतिनिधि हैं, के द्वारा हमला किया जा सकता है। पंचायती राज और नगरपालिका अधिनियम वस्तुतः ग्रामीण आभिजात्य वर्ग को कानूनी सामर्थ्य प्रदान करता है।

यह वर्ग सामाजिक परिवर्तन को रोकने का काम करेगा और राज्य ने पुनः एक बार समाज के पुराने मूल्यों के समक्ष घुटने टेक दिए हैं। अनुसूचित जाति के तीन चौथाई जोतदार कृषि अर्थव्यवस्था के हासिये पर है। अनुसूचित जाति की श्रमशक्ति का एक बड़ा तबका शारीरिक श्रम या निम्न कोटि के व्यवसायों में लगा हुआ हैं 80 प्रतिशत अनुसूचित जाति के छात्रों को अधूरी शिक्षा मिलती है। 1988–90 के शैक्षिक सत्र में 10वीं कक्षा तक 79.89 प्रतिशत अनुसूचित जाति के छात्रों की पढ़ाई बीच में ही छुट जाते हैं।[10]

स्वतंत्रता के दौरान पिछड़े वर्ग ने भारतीय ग्रामीण संपदा, संस्थाओं और राजनीति पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया है जिस पर परम्परागत तौर से उच्च वर्ग का अधिकार रहा है, लेकिन दलितों की स्थिति में कोई विशेष तथा क्रान्तिकारी परिवर्त्तन नहीं हुआ। आज परिस्थितियाँ ऐसी हो

गई है कि शहरी भारत में दलित का प्रत्यक्ष सामना द्विजों से है वहीं ग्रामीण भारत में दलितों का प्रत्यक्ष सामना पिछड़े से है, खासकर पिछड़े में अगड़े से है।[11]

आज लगभग आधी आबादी भूमिहीन कृषक मजदूर हैं तथा आधे से अधिक निरक्षर पर दलित नेतृत्त्व दलितों की मूलभूत समस्याओं को हल किए वगैर सीधे शासक वर्ग बन जाने का नारा दे रहा है। केन्द्रीय गृह मंत्रालय में अपने देश में दलितों और आदिवासियों पर पिछले कुछ वर्षों में अत्याचारों का आँकड़ा प्रस्तुत करते हुए इस बात पर संतोष व्यक्त किया है कि इस तरह की घटनायें क्रमशः होती रहती है।[12]

बिहार की कुल आबादी का 86–88% व्यक्ति गाँव में रहते हैं। जबकि संपूर्ण भारतीय औसत 79.29 प्रतिशत है। राज्य के कुल क्षेत्रफल का सिर्फ 44 प्रतिशत पर ही खेती हो पाती है। बिहार में औसतन जोत की इकाई 0.93 हेक्टेयर है। जब कि भारतीय औसतन 2–3 है। इसके अतिरिक्त यहाँ औसतन 32 से 35 प्रतिशत लोग भूमिहीन मजदूर है, कुछ ऐसे क्षेत्रों में तो यह 5 प्रतिशत से भी अधिक है। जिस कारण उत्पादन के साधन के स्वामित्व में घोर विषमता, अन्याय एवं शोषण को जन्म देती है।[13] बिहार का बड़ा भूमि भाग आज भी सामंती व्यवस्था के चपेट में ही भूमि सुधार के प्रति राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी तथा भूमिहीनों एवं सीमांतों के शोषण ने वामपंथी नक्सली संगठनों को फलने–फूलने का अवसर प्रदान किया था। दलित उत्पीड़न का अर्थ तरह–तरह के सताए गए, दबाये गए तथा कुचले गए लोगों पर अत्याचार हुआ है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन परिवेश में इन लोगों या महिलाओं पर किए गए अत्याचार कोई मायने नहीं रखता है। इन वर्गों में दलित चेतना का संचार हुआ। इस पर भी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है।

स्रोत एवं सन्दर्भ :

1. नंद किशोर साहु–दलित समाज का ऐतिहासिक दस्तावेज, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी–2013, पृ. प्राक्कथन
2. उपर्युक्त, पृ. 19
3. उपर्युक्त, पृ. 18
4. उपर्युक्त, पृ. 19
5. भारतीय किसान यूनियन के अध्यक्ष, महेन्द्र सिंह टिकैत ने 27 जुलाई 1995 में मांग की थी।

6. उपर्युक्त

7. आज दैनिक समाचार–26 जून 1997 पृ. 5

8. अध्यक्ष–श्री चन्द्रभान प्रसाद के हाल में प्रकाशित दलित आँकड़ा बैंक ग्रन्थ विश्वासघात।

9. उपर्युक्त

10. मानव विकास मंत्रालय के 1993 के प्रतिवेदन के आधार पर।

11. मनोरमा इयर बुक–2001.

12. अनिल चमड़िया का लेख–दैनिक जागरण, 21, नवम्बर 2000 ई.

13. यतीन्द्र शाण्डिल्य एवं डॉ0 अरविन्द–बिहार एक खोज–पृ. 258